SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

स्वाधीनता आन्दोलन में वामपंथी चेतना का उदयः एक समीक्षा

राणा उदय प्रसाद सिंह, पी.–एचडी., स्नातकोत्तर केन्द्र इतिहास विभाग
जगदम कॉलेज, संबद्ध जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author
राणा उदय प्रसाद सिंह, पी.–एचडी.
E-mail : ranaudayprasadsingh@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 28/06/2025
Revised on : 29/08/2025
Accepted on : 08/09/2025
Overall Similarity : 00% on 30/08/2025

शोध सार

वामपंथी विचारधारा का प्रत्यक्ष सम्बन्ध साम्यवादी एवं समाजवादी विचार धारा से माना जाता है, जिसके मुख्य प्रणेता कार्ल मार्क्स थे। इन्होंने 1848 ई. में 'कम्युनिस्ट घोषणा–पत्र' लिखकर विश्व को वामपंथी विचार धारा की एक नयी दिशा दी थी। इसी से प्रेरणा लेकर सर्वप्रथम 1917 ई. में रूस में महान लेनिन के नेतृत्व में समाजवादी क्रान्ति सफल हुई थी, जिसने विश्व की पूंजीवादी व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। यूरोप के कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट भारत के स्वाधीनता के सबसे बड़े समर्थक थे। मार्क्स ने 1857 ई. में ही भारत के तत्कालीन महाविद्रोह को 'राष्ट्रीय विद्रोह' कहा था। उन्हीं के शब्दों में "जिसे लोग फौजी बगावत समझ रहे हैं वह असल में राष्ट्रीय विद्रोह है। [1]

मुख्य शब्द

वामपंथी, सोशलिस्ट, राष्ट्रीय विद्रोह, सम्यवादी, स्वाधीनता, कम्युनल एवार्ड.

भूमिका

20वीं सदी के प्रथम दशक में भारत के राष्ट्रवादियों और क्रान्तिकारियों तथा यूरोप के समाजवादियों और अराजकतावादियों के बीच गहरे सम्बन्ध हो गये थे। हिण्डमेन के साथ सम्पर्क के कारण दादा भाई नौरोजी ने 1904 में सेकेण्ड इन्टर नेशनल, जिसे 'सोशलिस्ट इन्टर नेशनल' भी कहा जाता है, ने कांग्रेस में भाग लिया था। 'सोशलिस्ट इन्टरनेशनल' की स्टुट गार्ट कांग्रेस में भारत की तरफ से रूस्तम कामा, विरेन्द्र नाथ चट्टोपाध्याय भाग लिये थे। कामा ने एक प्रस्ताव दिया था कि भारत में ब्रिटिश राज का बना रहना, भारत के हितों के लिए विनाशकारी है। याद रहे कि भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के इस प्रस्ताव को सोशलिस्ट इन्टरनेशनल की कांग्रेस में

पास नहीं होने दिया। कामा ने गरमा–गरम भाषण देकर भारत का तिरंगा फहराया था जिसके तीन रंग थे हरा, पीला और लाल[2] यहाँ भी भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना दिसम्बर 1925 ई. में कानपुर में आयोजित पहले साम्यवादी सम्मेलन के अवसर पर की गयी थी। इसके पूर्व भी 1921 और 1924 ई. के दौरान भारतीय क्रान्तिकारियों के फलस्वरूप भारत में और अन्य देशों में भी साम्यवादी गुटों का उदय हुआ था। ये भारतीय क्रान्तिकारी सोवियत संघ की 'अक्टूबर क्रान्ति' से प्रेरणा लेकर राष्ट्रीय स्वाधीनता को अपना लक्ष्य बनाते हुए एक नया मार्ग प्रशस्त किया था। उस समय भारत में स्वाधीनता आन्दोलन का नेतृत्व बुर्जुआ बुद्धिजीवियों के हाथ में थी जिनकी गतिविधियों और विचारों से कुछ क्रान्तिकारी युवकों में निराशा थी। युवकों की इस वर्ग ने ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता को अर्जन करने की एक नयी विचार धारा, नये साधनों तथा तौर तरीकों की खोज की थी। इसी अवसर पर उन्होंने सोवियत संघ की 'अक्टूबर क्रान्ति' और मार्क्स–लेनिन के विचारों को सुना और उन्होंने मार्क्सवादी लेनिनवादी विचार धारा तथा इसके भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के परिस्थितियों में प्रयोग के आधार पर साम्यवादी गुटों का संगठन आरम्भ किया। ये सभी गुट दिसम्बर 1925 में आयोजित कानपुर सम्मेलन में एक दूसरे के सम्पर्क में आये और उन्होंने भारतीय साम्यवादी दल की स्थापना की। इनका पहला लक्ष्य था कि भारत की ठोस परिस्थितियों में मार्क्स और लेनिन के विचारों को लागू करके राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए एक कार्यक्रम पेश करना। उस समय तक राष्ट्रीय आंदोलन की मांग डोमिनियन पद तक सीमित थी। इसके स्थान पर साम्यवादी दल के कार्यक्रम में पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता का ध्येय सामने रखा गया।[3] अपने कार्यक्रम में उन्होंने साम्राज्यवादी शिकन्जे को हटाने, जमींदारों और रजवारों को समाप्त करने और श्रमजीवी लोगों को पूर्ण लोकतांत्रिक स्वतंत्रताएँ दिये जाने की मांगे करके सभी वर्गों के लोगों के लिए स्वाधीनता के लक्ष्य को ठोस रूप प्रदान किया। 1920–27 के बाद दल ने उग्र श्रमिक संघ आंदोलन और किसान आन्दोलन संगठित करने का बीरा उठाया। साम्यवादी राष्ट्रीय कांग्रेस के भीतर भी सक्रिय रहे। 1926–29 की अवधि में दल की प्रगति की दृष्टि से संगठनात्मक और राजनीतिक धरातल पर किया गया कार्य अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। इस काल में कई राज्यों में किसान और मजदूरों की पार्टियाँ बनी। 1936 से 1947 तक की अवधि दल के इतिहास में एक महत्वपूर्ण अवधि कही जा सकती है। इस अवधि में भारत ने स्वतंत्रता प्राप्ति की और देश का विभाजन भी हुआ। इसी अवधि में दल ने अपने राष्ट्रीय स्तर के वामपंथी पक्ष को एक मुख्य संगठित अखिल भारतीय राजनीतिक शक्ति के रूप में परिपक्व किया। इसी अवधि में शक्तिशाली अखिल भारतीय श्रमिक संघ, किसान और छात्र संगठनों की स्थापना की गयी।[4]

जहाँ तक बिहार का प्रश्न है, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 20 अक्टूबर 1939 को मुंगेर की एक छोटी परन्तु ऐतिहासिक नगरी में विजया दशमी के पवित्र अवसर पर हुई थी। करीब डेढ़ दर्जन बहादुर साथियों ने कम्युनिस्ट पार्टी की राज्य इकाई गठित की थी इनमें प्रमुख थे–सर्वश्री सुनील मुखर्जी, राहुल सांस्कृत्यायन, ज्ञान विकार मैत्रा, विश्वनाथ माथुर, अली अशरफ, बिनोद बिहारी मुखर्जी, श्याम किशोर झा, अनिल मैत्रा, शिव बच्चन सिंह, कृपा सिंह कुटया, चन्द्रमा सिंह, रतन राय[5]। बिहार में कम्युनिस्ट इकाई बनने के पीछे निम्नलिखित कारण प्रमुख थे–1930 के दशक के आखिरी वर्षों में जनसंगठनों और जन आंदोलनों के जोरदार विकास, इसके प्रति कांग्रेस नेतृत्व की बेरूखी, कम्युनिस्टों के प्रभाव में वृद्धि तथा सितम्बर 1939 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत की पृष्ठभूमि[6] बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण से सम्बन्धित बैठक में ऐसे ही देश भक्त जुटे थे, जिनमें अंग्रेजी हुकुमतों को उखाड़ फेंकने की व्याकुलता थी। ये असहयोग आंदोलन में भी सहभागी थे, जेल की यातना भी सह चुके थे और बमों और पिस्तौलों से अंग्रेजों की नींद हराम कर दी थी और इस निष्कर्ष पर आ गये थे कि शोषित पीड़ित जनता मजदूरों और किसानों को शोषण से मुक्त करने और अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने का एक मात्र रास्ता मार्क्सवाद और लेनिनवाद पर आधारित वैज्ञानिक समाजवांद पर है। बैठक में 'पोलिट व्यूरो' भाकपा के सदस्य श्री रूद्रदत्र भारद्वाज ने पर्यवेक्षक का काम किया था। पाँच सदस्यों की एक प्रांतीय समिति बनी थी जिसमें श्री सुनील मुखर्जी, राहुल सांकृत्यायन, ज्ञान–विकास मैत्रा, विश्वनाथ माथुर चुने गये और इसके सचिव श्री सुनील मुखर्जी थे।[7]

जहाँ तक समाजवादियों के आन्दोलन का प्रश्न है, भारत में 1934 ई. में ही अखिल भारतीय स्तर पर संगठित रूप से समाजवादी आन्दोलन का श्रीगणेश कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन से ही मानी जा सकती है जिसमें कुछ

प्राचीन ग्रन्थों से लेकर वर्त्तमान में विवेकानंद, नौरोजी जैसे महापुरुष के लेखनों में समाजवादी विचार देखने को मिलता है। वैसे अगर देखा जाय तो कांग्रेस, सोशलिस्ट कांग्रेस में ही थे, उनके नेतृत्व में ही कोई भी आन्दोलन को हिस्सा लिये हुए थे और किसी न किसी रूप में कांग्रेस के राष्ट्रीय नेतृत्व कर्ता के प्रेरणा स्रोत थे। खासकर भगत सिंह जैसे क्रान्तिकारी और उनके साथी भले ही औपचारिक रूप से कांग्रेस से जुड़े हुए न हो लेकिन अगर देखा जाय तो वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उनका रुझान भी राष्ट्रीय आंदोलन में कांग्रेस की ही ओर था। वैसे इससे भी साबित होता है कि भगत सिंह के पिता किशन सिंह और चाचा अजीत सिंह ब्रिटिश गुलामी के खिलाफ स्वतंत्रता सेनानी थे और नौजवान भारत सभा के पहले सम्मेलन में राष्ट्रीय झण्डा, ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार और अस्पृश्यता जैसे विषयों पर प्रस्ताव पास हुए थे।[8]

कांग्रेस सोशलिस्ट ग्रुपों के संगठन के समय में ही कम्युनिस्ट पार्टी की नीति ऐसी थी कि राष्ट्रवादी सोशलिस्ट उनके साथ नहीं जा सकते थे। 1928 ई. में कोमिन्टर्न की छठी कांग्रेस की स्वीकृत नीति के अनुसार ''सही दांव पेंच स्वराजिस्टों और खासकर इनके नेताओं के असली राष्ट्रवादी सुधारवादी चरित्र का जनता के बीच पर्दाफाश करना और स्वराजिस्टों, गांधीवादियों आदि के शांतिपूर्ण प्रतिरोध की शब्दावली का विरोध करना था।''[9] यहाँ तक कि कम्युनिस्टों ने इस नीति के तहत नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस नेता तक की कठोर निंदा की थी। खासकर बुनियादी तौर पर राष्ट्रवादी कांग्रेस सोशलिस्टों की पृष्ठभूमि, उनका सोंच और समस्याओं के प्रति नजरिया भिन्न रूप में था। 1934 के काल खण्ड में सोशलिस्ट ग्रुपों की स्थापना के पूर्व ही 1930 ई. में ही कई प्रान्तों में सोशलिस्ट ग्रुपों का गठन भी हो चुका था। स्वयं जवाहर लाल नेहरू ने लाहौर के कांग्रेस अधिवेशन में अपने को समाजवादी घोषित कर चुके थे। इतना ही नहीं इसके पहले ही इंडिपेंडेंस फॉर इण्डिया की स्थापना उनके नेतृत्व में ही गंठित हो गयी थी जिसमें आचार्य नरेन्द्र देव महामंत्री बनाये गये थे। उन्होंने 1929 में ही नेहरू को लिखे पत्र में कहा था कि बिना ''स्पष्ट कार्यक्रम के लोगों का आकर्षण हमारी ओर सम्भव नहीं होगा'' वैसे अगर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन के कारणों को देखे तो मालूम पड़ता है कि कांग्रेस के नेतृत्व में राष्ट्रीय आन्दोलन की गति धीमी थी। कांग्रेस केन्द्रीय एसेम्बली में 1929 से ही नहीं थी उसके बाहर कोई संगठित शक्ति आन्दोलनरत नहीं था इसलिए नये लोग कांग्रेस से जुड़ नहीं पा रहे थे इसी सभी कारणों से लोग राष्ट्रीय आन्दोलन को तेज करना चाहते थे, लोगों की छटपटाहट स्वाभाविक भी था। विश्व व्यापी मंदी ने भी लोगों को नये तरीके से सोचने को मजबूर किया। इसका गहरा असर भारतीय अर्थ व्यवस्था पर पड़ा था। जो थोड़े बहुत उद्योग थे, उनमें छंटनी हो रही थी और मजदूरी बहुत कम थी। असंगठित क्षेत्रों के मजदूरों की हालत बदतर थी। प्रतिक्रिया स्वरूप हड़तालें हो रही थी। कृषि क्षेत्र की हालत दयनीय थी। प्राथमिक वस्तुओं की कीमतों में गिरावट ने किसानों की हालत निराशाजनक बना दी थी। परिणामतः पंजाब, गुजरात, उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन होने लगे थे।[10]

तीसरा सबसे बड़ा कारण दुनिया में सोवियत संघ का उदय था। वहाँ के भी क्रांतिकारियों ने मार्क्सवाद एवं समाजवाद के विचारों से प्रेरणा लेकर जारशाही के शासन को खत्म कर दिया था और ब्रिटेन सहित पश्चिमी देशों के आक्रमण का डटकर मुकाबला कर रहे थे। यहाँ तक विश्व व्यापी मंदी ने भी उन्हें किसी प्रकार का रुकावट नहीं किया था इसलिए स्वाभाविक रूप से वह लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था।

सन् 1930 का डांडी मार्च और 1932 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन खत्म होने के बाद गांधी जी भी निराश होने लगे थे। 10 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने 'कम्युनल एवार्ड' की घोषणा के द्वारा पृथक मताधिकार थोप दिया था। गांधी जी द्वारा जेल में आमरण अनशन की घोषणा के बाद पूना समझौता हुआ था गांधी जी अस्पृश्यता विरोधी आन्दोलन चला रहे थे। दुर्भाग्य से इसका विरोध रूढ़िवादी हिन्दू तो कर ही रहे थे साथ ही पूना समझौता के खिलाफ डॉ. अम्बेडकर ने भी अभियान छेड़ दिया था।[11] गांधी जी के परामर्श पर कांग्रेस ने 'सिविल नाफरमानी आन्दोलन' स्थगित कर दिया। सभी जगह इसकी तीव्र प्रतिक्रिया हुई थी। यहां तक कि वियना से विट्ठलभाई पटेल और सुभाष चन्द्र बोस जैसे नेता अपना ध्यान जारी करते हुए कहा ''श्री गांधी ने सिविल नाफरमानी स्थगित करने का जो कदम उठाया है, वह असफलता की स्वीकारोक्ति है। हमारी स्पष्ट राय है कि एक राजनीतिक नेता के रूप

में गांधी असफल हो गये हैं। अतः अब समय आ गया गया है कि नये सिद्धान्त और नये तरीके से कांग्रेस का क्रान्तिकारी पुनर्गठन किया जाय और इसके लिए नये नेता की जरूरत है।''

सच तो यह है कि स्वराज पार्टी–वादियों के बढ़ते प्रभाव, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति एवं कम्युनिस्टों के स्वतंत्रता आंदोलन विरोधी रूख के कारण नासिक जेल में बंद प्रगतिशील नौजवानों से लेकर ट्रेड यूनियनों में काम करने वाले लोग सभी यह महसूस कर रहे थे कि आजादी की लड़ाई को वृहत पैमाने पर निश्चित आधार देने, स्वतंत्र भारत की स्पष्ट सामाजिक–आर्थिक रूपरेखा तैयार करने के लिए मजदूरों, किसानों की एक पार्टी का गठन करना बहुत ही आवश्यक है। इस प्रकार के चिन्तन ने अन्ततः 17 मई 1934 को कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना का निर्णय पटना में ले लिया गया।[12] पटना में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन होने से एक दिन पहले कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना की घोषणा करने का एक तात्कालिक कारण स्वराज पार्टी वादियों, जो कौंसिल प्रवेश पर जोर दे रहे थे, का प्रतिरोध करना था। यही कारण था कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में वैकल्पिक प्रस्ताव के रूप में जो प्रस्ताव सोशलिस्ट ने अपने स्थापना सम्मेलन में पारित किया उसका अधिकतर भाग कांउन्सिल प्रवेश का फैसला किया। इससे स्पष्ट होता है कि कांग्रेस पर उस समय कैसे लोगों का वर्चस्व था। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी अपने जन्मकाल से ही कांग्रेस के भीतर विवाद का विषय बनी रही। प्रारम्भ में तो लोगों को समझाने के लिए गांधी जी को कहना पड़ा था– ''समाजवादियों के सम्बन्ध में व्याकुल होने की जरूरत नहीं है।'' उन दिनों कांग्रेस के चार प्रमुख नेता थे–गांधीजी, सरदार पटेल, जवाहर लाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस। अगर देखा जाय तो सरदार पटेल ही ऐसे व्यक्ति थे जिनकी राय समाजवादियों के बारे में स्पष्ट थी। सुभाषचन्द्र बोस भी समाजवादियों के अधिक समर्थक थे, लेकिन उनकी शिकायतें थी। गांधीजी और नेहरू के साथ समाजवादियों के रिश्ते व्यक्तिगत आकर्षण राजनीतिक समीकरण और सैद्धांतिक मतभेदों के चारों ओर बने हुए थे। वैसे अगर देखा जाय तो समाजवादियों का सबसे अधिक आलोचना गांधीजी करते थे। समाजवादी देशी रियासतों एवं जमींदारी प्रथा के बिना मुआवजा का अन्त चाहते थे। इतना ही नहीं गांधीजी देशी रियासतों के सम्बन्ध में कुछ करना नहीं चाहते थे, और न जमींदारी प्रथा का अंत चांहते थे। गांधीजी के लिए अहिंसा बुनियादी आधार था और समाजवादियों के लिए वह अधिक से अधिक एक रणनीति हो सकती थी। समाजवादियों को पूरा विश्वास था कि उनके द्वारा प्रतिपादित नीति से ही भारत का निर्माण सही ढंग से हो सकता है जबकि गांधी जी उसे शब्दाडम्बर, किताबी और व्यवहारिकता से कोसो दूर मानते थे। उनकी सोंच थी कि समाजवादियों के कार्यक्रम में अस्पृश्यता निवारण जैसे कार्यक्रम का समावेश नहीं था। वैसे इन तमाम मतभेदों के बावजूद गांधीजी ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के अभ्युदय का स्वागत किया था।[13] प्रश्न उठता है कि आखिर इस अन्तर्विरोध के क्या कारण थे? इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि नेहरू तथा अन्य समाजवादियों से उनका व्यक्तिगत लगाव था। यहां तक कि जय प्रकाश नारायण की पत्नी, प्रभावती, उनकी धर्म पुत्री के समान थी, राम मनोहर लोहिया के पिता उनके अनन्य भक्त थे। ऐसे प्रतिभावान व्यक्तित्व की निष्ठा में शक का कोई कारण नहीं था। जो व्यक्ति अपने को समाजवादी पढ़े–लिखे युवकजन थे। देश की आजादी के लिए उनमें त्याग, बलिदान और स्वाधीनता की तड़प थी। इन सैद्धांतिक मतभेदों के बावजूद भी समाजवादियों के प्रति गांधी जी का गहरा अपनत्व और नेहरू के प्रति उनका मोह था। वैसे देखा जाय तो स्वयं नेहरू कभी भी कांग्रेस सोशलिस्ट पाटी में शामिल नहीं हुए लेकिन समाजवादियों के रूप में गिने जाते थे। एक और कारण, गांधी जी की स्वराज पार्टी को संतुलित रखने का भी एक माध्यम हो सकती है। गांधीजी द्वारा कौंसिल प्रवेश को समर्थन देना उनकी मजबूरी थी लेकिन समाजवादी कौंसिल प्रवेश के विरोधी थे। सच तो यह है कि नेहरू समाजवादियों को भीतर ही भीतर प्रोत्साहित करते रहे लेकिन औपचारिक रूप से उनके साथ नहीं आये। 1936 के कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्ष बनने पर उन्होंने तीन समाजवादियों को कार्य समिति में गांधी जी के परामर्श के कारण ही क्यों न रखा हो। सम्भवतः गांधीजी ने भी समाजवादियों को रखने का परामर्श इसलिए दिया कि वे उनके साथ नेहरू के नजदीकी रिश्ते को जानते थे।

समाजवादियों के प्रति सरदार पटेल के मन में शुरू से लेकर अन्त तक कोई दिलचस्पी नहीं रहे। हमेशा समाजवादियों के प्रति उनका पूर्वाग्रह ठीक नहीं रहा। पटना सम्मेलन के कुछ ही दिनों बाद जेल से निकलने के

बाद पटेल गुजरात के साथियों को पत्र लिखकर समाजवादियों के प्रति चेतावनी दी और कहा वे उन्हें मात्र किताबी बहस चलाने वाला मानते थे। समाजवादियों द्वारा स्वतंत्र भारत का भावी रूप देखा, पर विचार फिजूल लगता था। पटेल के इन पूर्वाग्रहों दृष्टिकोण से द्वितीय महायुद्ध के समय से आजादी मिलने के बाद जब तक कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट एक दूसरे के कट्टर आलोचक बन गये थे तब भी वे दोनों को एक ही तराजू पर तौलते रहे। सरदार का ऐसा रूख संभवतः नेहरू के प्रति प्रतिद्वन्द्विता का कारण था क्योंकि 1929 में कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में अध्यक्षता के प्रश्न पर नेहरू की तुलना में सरदार पटेल के नाम का समर्थन अधिकतर प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों ने किया था क्योंकि पटेल वारदोली के 'हीरो' बनकर उभरे थे, लेकिन गांधीजी के परामर्श पर नेहरू को अध्यक्ष बनाया गया था। पटेल की प्रतिक्रिया मानवोचित रूप से स्वाभाविक था। उधर समाजवादी नेहरू को अपना नेता मानते थे। वैसें मानव जीवन में व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों को नीतिगत और सैद्धान्तिक जामा पहनाना अनोखी घटना नहीं है। गुजरात के समाजवादी, रोहित मेहता को, पटेल द्वारा लिखे पत्र में समाजवादियों को झूठा बतलाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना की यह कहना कि 'अगर जवाहर लाल नेहरू वैसी कोई पार्टी बनाना चाहते हैं तो वे कांग्रेस के सचिव पद और कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया होता।' वैसे समाजवादियों के प्रति सुभाष चन्द्र बोस का रूख स्पष्ट था लेकिन बाद में उनकी शिकायतें भी थीं। सुभाष चन्द्र बोस गांधीवादी तरीके से असंतुष्ट थे और एक अलग रूप से वैकल्पिक योजना की रूप रेखा भी बना रहे थे। अगर देखा जाय तो मालूम पड़ता है कि शुरू में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी गठन में समाजवादियों का उद्देश्य कांग्रेस पर अपना वर्चस्व कायम करना था। इस दिशा में सुभाष चन्द्र बोस भी चाहते थे कि समाजवादी कांग्रेस के अधिवेशन में बोस में अपने अध्यक्षीय भाषण में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के गठन का न केवल समर्थन ही किया बल्कि सोशलिस्ट के लिए अनेक तर्क प्रस्तुत किये थे। उन्होंने यह भी कहा 'मात्र कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी द्वारा द्वारा ही समाजवादी प्रचार संचालित किया जा सकता है।[14]

प्रारंभिक वर्षों में समाजवादी राष्ट्रीय आंदोलन के समय उग्र पक्ष का प्रतिनिधित्व करते रहे। 1937 के प्रांतीय स्वायत्तता के तरह हुए चुनावों में भी बहुमत हासिल करने के बाद कांग्रेस का स्थापित नेतृत्व मंत्रिमंडल गठन बन गया लेकिन इसका विरोध भी करते रहे। द्वितीय महायुद्ध के समय जब ब्रिटिश सरकार भारतीय जनता से विचार विमर्श किए बिना ही भारत को युद्ध में धकेल दिया तब कांग्रेस नेतृत्व युद्ध के प्रस्ताव पर विचार करता रहा लेकिन समाजवादियों ने शुरू से ही युद्ध के प्रतिरोध की नीति अपनायी। 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के समय अधिकतर नेता जेल में ही थे लेकिन इस दिशा में समाजवादी भूमिगत होकर आंदोलन चला रहे थे। युद्ध समाप्ति के तत्काल बाद आजादी मिलने में 1942 का आंदोलन जन असन्तोष का महत्वपूर्ण योगदान था। वैसे समाजवादियों ने कैबिनेट मिशन योजना का भी विरोध किया था। इस प्रस्तावित योजना में संविधान सभा, प्रान्तों के समूहीकरण एवं आर्थिक तथा वित्तीय साधनों पर केन्द्रीय सरकार के अल्प अधिकारों से समाजवादी काफी असंतुष्ट थे। संविधान सभा में हिस्सा लेना उन्हें खतरा महसूस हो रहा था इसका एक बड़ा कारण यह था कि वह सार्वभौम मताधिकार के आधार पर गठित नहीं की गयी थी। ऐसी स्थिति में आजादी के बाद समाजवादियों का कांग्रेस में रहना शायद संभव नहीं लग रहा था। वैसे कांग्रेस छोड़ने के प्रश्न पर समाजवादियों के बीच विवाद अवश्य चल रहा था, लेकिन इसके निर्णय का अधिकार केवल उनके पास नहीं था। कांग्रेस के पुराने नेता उन्हें अपने विचारों के साथ जोड़ना चाहते थे या नहीं यह महत्वपूर्ण था। गांधी जी जब तक जीवित रहे, इन मतभदों के बावजूद समाजवादी, कांग्रेस में बने रहे लेकिन गांधीजी की मृत्यु के उपरान्त स्थिति विपरीत हो गयी। संगठनात्मक रूप से सरदार पटेल कांग्रेस के सबसे शक्तिशाली नेता थे लेकिन समाजवादी के प्रति उनकी राय अच्छी नहीं थी। प्रधानमंत्री बनने के बाद नेहरू समाजवादियों को कांग्रेस के अंदर रखने के लिए न तो उत्साहित ही थे और न ही किसी तरह का जोखिम ही उठाना चाहते थे। कांग्रेस विधान में संशोधन के बाद उसके अन्दर सोशलिस्ट पार्टी जैसे संगठन का बना रहना असम्भव हो गया। अगर भारत के समाजवादी आन्दोलन का सैद्धान्तिक पक्ष पर विचार किया जाय तो यह बहुत ही विवादास्पद विषय रहा है। कुछ नीति निर्धारक समाजवादी आंदोलन के विखराव का सैद्धांतिक एकरूपता का अभाव मानते थे क्योंकि समाजवादी नेताओं के विचार किसी बिन्दु पर निर्धारित नहीं थे। जैसे आचार्य नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण मार्क्सवादी विचार के अनुयायी थे तो अशोक मेहता फेब्यिनवादी, लोहिया गांधीजी से काफी प्रभावित थे तो सम्पूर्णानंद, यूसूफ

मेहरअली जैसे क्रान्तिकारी राष्ट्रवादी थे। मीनू मसानी मार्क्सवादी थे लेकिन बाद में ट्रॉट्की से प्रभावित हो गये। इस प्रकार देखा जाय तो प्रत्येक समाजवादियों का चिन्तन अलग–2 रूप से था और किसी का भी एक निश्चित आधार नहीं था इस प्रकार भारत के समाजवादी आंदोलन की विचार यात्रा मार्क्सवाद से प्रारम्भ होकर लोकतांत्रिक समाजवाद से होते हुए तीसरी दुनिया के लिए एक नये समाजवादी सिद्धांत के प्रयास में खत्म होती है। जो भी हो भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में समाजवादी कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में ही रहकर कार्य किया।

प्रश्न उठता है कि जब राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना 1925 में ही हो गयी तो बिहार में इतने वर्षों के बाद भाकपा का गठन क्यों हुआ? इतिहास बताता है कि सन् 1934 ई. में ही कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी बनी थी और भाकपा एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बीच एक समझौता हुआ था और यह तय हुआ था कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में कम्युनिस्ट कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में ही रहकर काम करेंगे, मगर कांग्रेस सोशलिस्ट कांग्रेस का एक हिस्सा और भी था जिसमें अशोक मेहता, मीनू मसानी प्रमुख थे जो घोर सोवियत विरोधी थे। फलतः कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में कश्म–कस था। यह भी सच था कि कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के महासचिव जय प्रकाश बाबू और नरेन्द्र देव जैसे कुछ अन्य कांग्रेस नेता भी थे जो वैज्ञानिक समाजवाद के आधार पर एक सुयंक्त पार्टी के निर्माण की बात कर रहे थे।[15]

जय प्रकाश नारायण ने कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन गांधी जी के आशीर्वाद से इसलिए किया कि कांग्रेस से हटकर सीधे कम्युनिस्ट पार्टी में नहीं चले जाय इसलिए कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का गठन कांग्रेस और सोशलिस्ट पार्टी के बीच एक बांध के रूप में किया गया। जय प्रकाश जी की इच्छा जहाँ कम्युनिस्टों की सुधारने की थी वहीं भाकपा के तत्कालीन महासचिव एक मंच खोज रहे थे जिस मंच से कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी आपस में मिलकर लड़े। भूतपूर्व कम्युनिस्ट सांसद योगेन्द्र झा का भी यही कहना था कि बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी के निर्माण में विलम्ब का कारण भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी एवं कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के बीच समझौता ही था। जो भी हो अधिकांश कम्युनिस्ट नेताओं का यही मानना था कि हिन्दी भाषी प्रदेशों में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना अभी नहीं किया जाना चाहिए और कम्युनिस्ट, कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी में ही रहकर काम करें। तत्कालीन महामंत्री पी. सी. जोशी का यह वाक्य 'अच्छा कांग्रेस सोशलिस्ट बनो'–इस बात को चरितार्थ करता है।[16]

दूसरे महायुद्ध के पहले तक की स्थिति यही थी कि मजदूरों, किसानों और अन्य श्रमजीवियों में वामपंथी चेतना इस कदर घर कर गयी थी कि उनका आर्थिक आंदोलन धीरे–धीरे राजनीतिक आन्दोलन के रूप में रूपान्तरित होता चला गया। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन इसका एक प्लेटफॉर्म बना। राष्ट्रीय आंदोलन को भी एक सफल क्रान्ति की ओर ले जाने की जरूरत थी जिसे एक क्रान्तिकारी नेतृत्व चाहिए था। कम्युनिस्टों ने संभवतः इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'नेशनल फ्रंट' नामक पत्रिका निकाला जिसके सम्पादक थे पूरन चन्द जोशी, अजय कुमार घोष, अमृत डांगे, रनदीवे और मुजफ्फर अहमद। इनका घोषित लक्ष्य भी था कि साम्राज्यवाद के विरुद्ध मार्क्सवाद लेनिनवाद के आधार पर संयुक्त मोर्चे की स्थापना के लिए हर तरह का प्रयत्न करना।[17]

वर्ष 1947 में सोलह वामपंथी दलों द्वारा 'अखिल भारतीय संयुक्त वाम मोर्चा' बनाए जाने पर पं. शीलभद्र याजी उसके संयोजक तथा महासचिव बनाए गए। वर्ष 1955 में जवाहरलाल नेहरू द्वारा वामपंथियों से 'कांग्रेस' में शामिल होकर 'समाजवाद' के लिए काम करने के संबंध में किए गए आहवान का उत्तर देते हुए पं. शीलभद्र याजी कांग्रेस में शामिल हो गए। याजी जी पंद्रह वर्षों तक राज्य सभा के सदस्य रहे। वर्ष 1937 में वे 'बिहार विधान सभा' के सदस्य निर्वाचित हुए थे और कांग्रेस विधायक दल के मुख्य सचेतक थे।[18]

कम्युनिस्टों ने इस दिशा में पूरी कोशिश भी की। दोनों पार्टियों के प्रतिनिधियों को मिलाकर एक 'ऑल इण्डिया कॉन्ट्रेट कमिटि' भी बनी, जिसमें दोनों के सदस्य थे लेकिन सी. एस. पी. (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी) के नेतृत्व का दक्षिणपंथी का जो अंश था जिसमें राममनोहर लोहिया, मीनू, मसानी, अशोक मेहता और अच्युत पटवर्द्धन प्रमुख थे, मूलत प्रतिशत कम्युनिस्ट और सोवियत विरोधी थे। कम्युनिस्ट पार्टी का यही लक्ष्य था कि वे कांग्रेस के साथ मिलकर काम करते रहे और अनुकूल अवसर आने पर एक नयी पार्टी बने, जिसका नाम संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी का यही

लक्ष्य था कि वे कांग्रेस के साथ मिलकर काम करते रहे और अनुकूल अवसर आने पर एक नयी पार्टी बने, जिसका नाम संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी रखी जाय। वामपंथी कम्युनिस्ट इसके समर्थक थे, परन्तु दक्षिणपंथी इसके विरोधी थे। अप्रैल 1938 ई. में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का चतुर्थ सम्मेलन लाहौर में हुआ लेकिन दुर्भाग्य से दक्षिण पंथी सोशलिस्ट अल्पमत में रहते हुए भी नेतृत्व में आ गये। मीनू मसानी तो एकदम आगे बढ़ाकर एक दस्तावेज ही पेश कर दिया जिसका नाम था 'कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के खिलाफ कम्युनिस्टों का षडयंत्र'। इस दस्तावेज में उन्होंने कम्युनिस्ट पार्टी के गुप्त सरकुलर का भण्डाफोड़ किया जिसके आधार पर यह सिद्ध करने की कोशिश की गयी कि कम्युनिस्ट लोग कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी को अन्दर से तोड़ने का प्रयास कर रहे थे। इस प्रकार सी. एस. पी. के दक्षिण पंथी नेतृत्व के कम्युनिस्ट सोशलिस्ट एकता को आखिर तोड़ ही दिया, जब द्वितीय विश्व युद्ध के छिड़ने पर भाकपा ने इस विश्व युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध की संज्ञा दी। युद्ध के चरित्र के बारे में कम्युनिस्ट पार्टी के पोलिट ब्यूरो ने कहा कि यूरोप में आजकल जो हो रहा है, वह फॉसीज्म के खिलाफ जनतंत्र का युद्ध नहीं है वह साम्राज्यवादी युद्ध है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए युद्ध के संकट का क्रान्तिकारी उपयोग करना चाहिए। साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय मुक्ति के युग में बदलना जरूरी है अर्थात् कम्युनिस्ट पार्टी ने साम्राज्यवादी युद्ध को राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध में बदलने की सारी क्रान्तिकारी शक्तियों को एक मोर्चा पर लाना चाहते थे और गांधीवादी तकनीक को तोड़ फेंकना चाहते थे। दूसरी ओर कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का दृष्टिकोण इससे भिन्न था वे किसी भी तरह ब्रिटेन का हार चाहते थे क्योंकि ब्रिटिश राज्य ध्वस्त होने के बाद हो वे भारत के स्वतंत्रता की आशा रखते थे। स्वभावतः 'दुश्मन का दुश्मन हमारा दोस्त' की भावना से भी मुक्त नहीं थे।[19]

कम्युनिस्ट पार्टी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के समझ के बीच यही अन्तर युद्ध के दूसरे दौर में उनके अलगांव का कारण बना। इस प्रकार 'कासोपा' और 'भाकपा' के बीच का समझौता और एकता भंग हो गई। बिहार सी एस. पी. के मुखपत्र जनता ने स्टालिन के ये बेटे शीर्षक से लेख लिखकर कम्युनिस्टों को खुली गालियां दी।[20]

निष्कर्ष

इस प्रकार स्वतंत्रता आन्दोलन को वृहत पैमाने पर एक निश्चित आधार देने तथा स्वतंत्र भारत की स्पष्ट सामाजिक आर्थिक रूप रेखा तैयार करने के लिए वामपंथी विचारकों ने मजदूर और किसानों को संगठित कर इन्हें मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया। यद्यपि इन वामपंथियों में सैद्धांतिक मतभेद बने रहे फिर भी स्वतंत्रता आंदोलन में इनके योगदान को भुलाया नहीं जा सकता।

संदर्भ सूची

1. कार्ल मार्क्स (1909) *द फार्स्ट इंडियन वार ऑफ इनडिपेंडेन्स 1857–59,* पब्लिशिंग हाउस, मास्को, पृ. 59।
2. मजूमदार, रमेश चन्द्र (1975) हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट इन इण्डिया, भाग–2, फर्म के. एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता 1975, पृ. 302।
3. कृष्णन, एन. के. (1992) भारतीय साम्यवादी दल, संवैधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, *रिसर्च पब्लिकेशर्स इन सोशल साइन्सेज,* 2/44 अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली–6, पृ. 38।
4. वही, पृ. 39।
5. सिंह, अजीत कुमार (1993) शोध–पत्र बिहार में राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की भूमिकाः एक समीक्षा, प्रस्तुत शोध प्रबंध, अगस्त, 1993, पृ. 33।
6. कुमार, राम (1989) *कम्युनिस्ट संदेश,* जन शक्ति प्रेस, पटना, फरवरी, 1989, पृ. 38।
7. मुखर्जी, सुनील (1989) *पार्टी जीवन की कुछ यादें,* पीपुल्स बुक हाउस, प्राइवेट लिमिटेड, पटनाख पृ. 6।

8. सिंह, भगत एवं अन्य (1985) *प्रारम्भिक क्रान्तिकारीः सोहन सिंह जोशी, समाजवादी आन्दोलन के दस्तावेज,* प्रतिपक्ष प्रकाशन सी/पी–39, पीतमपुरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 2।
9. 'समता', शर्मा, हरिदेव (1985) *समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज,* अक्टूबर, दिसम्बर 1094 अंक, प्रतिपक्ष प्रकाशन, सी/पो–39, पीतमपुरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985, पृ. 2।
10. ताराचन्द्र (1969) *हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेंट भाग–4,* अजय भवन पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ. 186–87।
11. वही, पृ. 188।
12. सिंह, विनोद प्रसाद; मिश्र, सुनील (1965) *समाजवादी आंदोलन के दस्तावेज, 1934–52,* प्रतिपक्ष प्रकाशन, सी/पी–39, पीतमपुरा, दिल्ली 34, पृ. 4।
13. इन्द्रदीप सिंह (1972) *बिहार में कांग्रेस पार्टी का विकास,* जन शक्ति, प्रिंटिंग प्रेस, पटना, भाग–1, पृ. 4।
14. वही, पृ. 4–5।
15. सिंह, इन्द्रदीप (1972) *बिहार में कांग्रेस पार्टी का विकास,* जन शक्ति, प्रिटिंग प्रेस, पटना, भाग–1, पृ. 5।
16. सिंह, इन्द्रदीप (1972) *बिहार में काग्रेस पार्टी का विकास,* भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी प्रकाशन, जन शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, पटना, भाग–1, पृ. 7।
17. सिंह, अयोध्या (1977) *भारत का मुक्ति संग्राम,* दि मेकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 648।
18. याजी, सत्यांनंद (2001) देश–रत्न पं. शीलभद्र याजी जी, पं. शीलभद्र भाजी मेमोरियल चैरिटेबल ट्रस्ट, बख्तियारपुर, पटना, 28.2.2001, पृ.–6।
19. वही, पृ. 6।
20. इन्द्रदीप सिंह (1980) *बिहार में कम्युनिस्ट पार्टी का विकास' भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी,* जन शक्ति प्रिंटिंग प्रेस, पटना, भाग–1, पृ. 9।

****